E-ISSN: 3048-6041 | Volume- 2, Issue- 7 | July 2025

ईश्वर विलास महाकाव्य में प्रतिबिम्बित वैदिक धर्म

सोनू मीणा

शोधार्थी – संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

Email id -sonumeena1616@gmail.com

सार

प्रस्तुत शोधपत्र कविकलानिधि श्रीकृष्ण भट्ट रचित ईश्वरविलास महाकाव्य में प्रतिबिम्बित वैदिक धर्म के स्वरूप का विश्लेषण करता है। महाकाव्य में वर्णित जयपुर राजवंश के नरेशों की गहन धार्मिक निष्ठा, वैदिक परंपराओं में उनकी आस्था तथा विष्णुभक्ति का विशद चित्रण किया गया है। पृथ्वीराज, भारमल्ल, मानसिंह और जयसिंह जैसे राजा न केवल विष्णु के भक्त रहे, अपितु उन्होंने मंदिर निर्माण, तीर्थयात्रा, यज्ञ एवं सांस्कृतिक आयोजनों के माध्यम से वैदिक परंपरा को संरक्षित व समृद्ध किया। विशेष रूप से राजा मानसिंह द्वारा आमेर में शिलादेवी मंदिर, वृन्दावन में गोविन्ददेव मंदिर, तथा विभिन्न तीर्थ स्थलों पर मंदिर-निर्माण से यह स्पष्ट होता है कि शासक-वर्ग वैदिक धर्म के संरक्षक के रूप में कार्यरत था। महाकाव्य में वर्णित मंगलाचरण, ऐतिहासिक घटनाओं एवं शिलालेखीय प्रमाणों के आधार पर यह सिद्ध होता है कि जयपुर राजवंश की राजनीति और धार्मिकता में समन्वय विद्यमान था।

यह अध्ययन न केवल एक साहित्यिक ग्रंथ की धार्मिक पृष्ठभूमि को उद्घाटित करता है, बल्कि मध्यकालीन भारत में वैदिक धर्म की पुनः प्रतिष्ठा के ऐतिहासिक प्रयासों को भी उजागर करता है।

मुख्य शब्द;- यज्ञ, राजवंशीय परंपरा, ब्रह्म, वेद, पुराण, मंत्रनिवह, ब्रज क्षेत्र.

भूमिका

कविकलानिधि श्रीकृष्ण भट्ट के महाकाव्य 'ईश्वरविलास' के अनुसार जयपुर राजवंश के राजाओं के हृदय में वैदिक धर्म के प्रति घनिष्ठ आस्था, श्रद्धा एवं विश्वास था। अतः वे न केवल मंदिरों आदि के निर्माण एवं जीर्णोद्धार में उद्धत बने रहते थे, अपितु उनकी भावनाओं में वैदिक धर्म अनुवासित रहता था।

साहित्य समीक्षा

प्रस्तुत आलेख सम्बन्धी साहित्य की सर्वेक्षण इसप्रकार किया गया है, कवि की कृतियों में तथा मुख्य रूप से ईश्वरविलास में से उनके द्वारा प्रणीत जयपुर के कछवाहा शासकों की धर्मवृत्ति को रेखांकित करने का प्रयास किया गया है।

ईश्वरविलास, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर (भट्ट, 1958; 2006)। इस महाकाव्य में जयपुर के कछवाहा शासकों की धर्मवृत्ति को रेखांकित करने का प्रयास किया गया है।

आमेर- जयपुर का संस्कृत वाङ्मय, प्रो0 प्रभाकर शास्त्री, राष्ट्रीय संस्कृत साहित्य केन्द्र, जयपुर, संस्करण 2002, इसमें 23 आलेखों का संग्रह है, जो किसी सेमीनार में विविध विद्वानों द्वारा प्रस्तुत किये गये थे। ये लेख भी श्रीकृष्णभट्ट के जीवन पर प्रकाश डालते हैं तथा उनकी रचनाओं में आगत प्रमुख विषय का भी प्रतिपादन हुआ है।

ईश्वरविलास में जयपुर-वर्णन, डॉ० रमाकांत पाण्डेय, जगदीश संस्कृत पुस्तकालय, जयपुर, संस्करण 2010, इसमें विविध विद्वानों द्वारा श्रीकृष्ण के साहित्य के आधार पर जयपुर के वर्णनपरक 24 लेखों का संग्रहण किया गया है, जिसमें न केवल कवि के व्यक्तित्व पर प्रकाश डाला गया है, अपितु जयपुर के नगरवर्णन, नगर-नियोजन, के साथ-साथ जयपुर के राजाओं के वैदिक धर्म के प्रति निष्ठा एवं आस्था को प्रतिपादित किया गया है।

इस प्रकार विद्यमान साहित्य एवं स्रोतों से यह स्पष्ट होता है कि श्रीकृष्ण भट्ट का योगदान केवल रचना की दृष्टि से ही नहीं बल्कि संस्कृत साहित्य की विद्वत परंपरा के संवाहक के रूप में भी महत्वपूर्ण है।

1. **पद्धति-** इस लेख की पद्धति वर्णनपरक रहने वाली है, क्योंकि इसकी विषयवस्तु ईश्वरविलास महाकाव्य में जयपुर के कछवाहा शासकों की धर्मवृत्ति को बताना है। अतः वर्णनपरक शैली मेंउनकी धर्मवृत्ति को रेखांकित किया जायेगा।

मुख्य विषय-

सर्वप्रथम महाकाव्य के मंगलाचरण में ही कवि ने स्वनामतुल्य भगवान श्रीकृष्ण को नमस्कार किया है, जो इस प्रकार है –

विद्युद्वल्लिसमानमंजुमहसा पीताम्बरोद्द्योतिनीं
लावण्यैकललामधाम ललनां कांचिदधानं भजे।
ह्रीलम्भि व्रजयोषितां भवभयाभीलं सलीलं हर–
नीलं प्रावृषिजप्रसारिजलदश्रीलंघिशीलं महः।।[1]

कवि उक्त मंगलाचरण में कहता है कि मैं देवर्षि कृष्णभट्ट विद्युल्लता के समान सुंदर तेज से पीतांबर (श्रीकृष्ण) को भाषित करने वाली, सौंदर्य की एकमात्र मनोहर स्थान, किसी (राधा) सुंदरी को धारण करने वाले, ब्रज की स्त्रियों में लज्जा उत्पन्न करने वाले तथा अपने भक्तों के सांसारिक कष्टों को लीलापूर्वक हरण करने वाले, वर्षाकालीन मेघ की चारों ओर फैलने वाली शोभा को तिरस्कृत करने वाले नीले तेज का स्मरण करता हूँ।

पौराणिक ग्रंथों में भगवान श्रीकृष्ण का स्वरूप नीलवर्ण बताया गया है, जिसकी तुलना वर्षाकालीन नवीन जलद से की गई है। कविवर श्रीकृष्णभट्ट ने मेघ और उसमें समाहित विद्युत के प्रतीक के माध्यम से श्रीकृष्ण और राधा का चित्रण किया है। जैसे –

महन्मनोमंदिरमध्यवासिनीं प्रणम्य वाणीं प्रतिभाविभासिनीम्।
समुल्लसत्सूक्तिसुधाविकासिनीं तनोमि वातद्विमलां विलासिनीम्।।[2]

[1] *ईश्वरविलास, महाकाव्य, श्रीकृष्णभट्ट, प्रथम सर्ग, श्लोक–1*

[2] *ईश्वरविलास, सर्ग–1, श्लोक–1, मंगलाचरणस्वरूप*

अर्थात् विद्युत स्वाभाविक रूप से मेघ की सहचरिणी होती है, वैसे ही राधा भी श्रीकृष्ण रूपी मेघ की अनन्य संगिनी हैं। विद्युत जिस प्रकार आकाश को प्रकाशित करती है, उसी प्रकार राधा श्रीकृष्ण के पीतांबर की शोभा को उजागर करती हैं। ग्रंथ के आरंभ में नमस्कारात्मक मङ्गलाचरण करने के पश्चात् कविवर श्रीकृष्णभट्ट अगले श्लोक में ग्रंथ की निर्विघ्न पूर्णता एवं उसकी ख्याति के लिए प्रार्थना करते हैं।

"इतिहासकारों के अनुसार जयपुर के महाराज पृथ्वीसिंह के पिता चन्द्रसेन थे। उनकी मृत्यु के उपरांत पृथ्वीराजसिंह 17 फरवरी 1503 को आमेर की गद्दी पर बैठे। ये महान भगवद्भक्त थे। कविकलानिधि ने इन्हें विष्णुभक्त बताया है। इनका राज्याभिषेक धूमधाम से सम्पन्न हुआ।"[3]

पृथ्वीराज को इस लोक की अपेक्षा परलोक की अधिक चिंता रहती थी। आरंभ में ये कापालिक सम्प्रदाय के योगी चतुरनाथ के सत्संग में थे, किंतु कालांतर में इन्होंने वैष्णवधर्म स्वीकार कर लिया। भगवद्भक्त होने के साथ-साथ पृथ्वीराज राजनीति में भी चतुर थे। ईश्वरविलास महाकाव्य में इन महाराज पृथ्वीराज को विष्णु का अनन्य भक्त चित्रित किया गया है, उसी के लिए श्लोक संख्या 16 द्दष्टव्य है –

भास्वद्वंशवतंसतां दधति ये धर्मात्मनां धीमतां
धौरेया धरणीतले सुविदिता मान्धातृमुख्या नृपाः।
तस्मिन्नेव कुलेऽमले विधुरिव क्षीराम्बुधौ पार्थिवः
पृथ्वीराज इति प्रसिद्ध उद्भूद्यो विष्णुभक्ताग्रणीः।।[4]

अर्थात् जो धर्मात्माओं और विद्वानों में अग्रगण्य तथा पृथ्वी पर प्रसिद्ध सूर्यवंशी राजा मान्धाता के कुल की शोभा बढ़ाने वाले थे, ऐसे ही दुग्धसमुद्र में चन्द्रमा की तरह निर्मल उस वंश में पृथ्वीराज नामक राजा उत्पन्न हुए। वे विष्णु भक्तों में प्रमुख माने जाते थे।

पंडित हनुमान शर्मा के अनुसार, पृथ्वीराज 17 जनवरी 1503 को आमेर के राजा के रूप में अधिष्ठित हुए।[5] इतिहासकारों ने उन्हें महान भगवद्भक्त बताया है। सांसारिक भोग–विलास में उनकी विशेष रुचि नहीं थी। आगे उन्हीं पृथ्वीराज की विष्णुभक्ति को अग्रिम छंद में भी और अधिक स्पष्ट करते हुए कहा है –

तस्याऽनेकप्रचुरविबुधाराधनेन प्रकामं
श्रीमद्विष्णौ परिणतिमगाद्भाग्यतो भक्तिभावः।
योऽधिद्वारावति सुकृतभृत्स्वप्नमध्ये प्रयातः
प्रातर्जातः प्रकटितवपुः शङ्खचक्रादिचिह्नः॥[6]

---

[3] *ईश्वरविलास, भूमिका, पृष्ठ 5*

[4] *ईश्वरविलास, प्रथम सर्ग, श्लोक–16*

[5] *शर्मा, हनुमान – "नाथावतों का इतिहास", पृ. 44*

[6] *ईश्वरविलास, प्रथम सर्ग, श्लोक–17*

भाव यह है कि महाराज पृथ्वीराज का अनेक प्रकार से प्रचुर देवताओं की आराधना के कारण सौभाग्यवश भगवान् विष्णु में अत्यधिक भक्तिभाव परिपाकोन्मुख हुआ। वह पुण्यवान् (महाराज पृथ्वीराज) स्वप्न में द्वारकापुरी गये (और दूसरे दिन) प्रातः काल (उनके घर में) शंख–चक्र आदि (राज) चिह्नों से युक्त (पुत्र) प्रकट शरीर वाला (उत्पन्न) हुआ।

इन्हीं पृथ्वीराज के भारमल्ल नामक पुत्र हुआ जो कि कद की दृष्टि से थोड़ा न्यून था, अतः उसकी उपमा देते हुए वामन भगवान से तुलना की है। इससे भी यह सिद्ध होता है कि इस महाकाव्य में जयपुर वंशजों को वामन अर्थात् विष्णु का भक्त बताया गया है –

तस्याभूत्तनयस्त्रिविक्रम इवाऽऽविर्भूतसद्विक्रमः
पृथ्वीभारसमूहधारणविधी शेषावतारः स्वयम्।
अध्यम्बावति यश्च राज्यमकरोल्लब्धं निजं पैतृकं
विख्यातो भुवि भारमल्ल इति स क्षोणीभृतां शेखरः ॥[7]

अर्थात् उसके (पृथ्वीराज के) भगवान वामन के समान प्रकट पराक्रम वाला, पृथ्वी के भारसमूह को धारण करने की विधि में स्वयं शेषनाग का अवतार (भारमल्ल नामक) पुत्र उत्पन्न हुआ। जिसने आमेर में प्राप्त अपना पैतृक राज्य किया। राजाओं में श्रेष्ठ वह पृथ्वी में भारमल्ल नाम से विख्यात है।

आगे चलकर इन भारमल्ल को भगवानदास नामक पुत्र हुआ और उसका भी पुत्र मानसिंह हुआ, जो कि अत्यन्त धार्मिक प्रवृत्ति का था, और उसने आमेर में एक शिलादेवी का मंदिर बनवाया। यही प्रथम सर्ग की श्लोक संख्या 25 में बताया गया है, जिसका अनुवाद इस प्रकार है – जो महाराज मानसिंह पूर्व महादिशा की विजय यात्रा के प्रसंग में काशी तीर्थ, गया और प्रयाग नगरों में यज्ञों, वापी–कूप–खनन आदि सुकर्मों को करता हुआ वहाँ राजाओं के सैकड़ों अनुल्लंघनीय दुर्गों को जीत कर करुणामयी शिला माता दुर्गा को अपने घर (आमेर) लाया। जैसा कि निम्न श्लोक में कहा गया है –

जित्वा तत्र शताधिकान् क्षितिभृतां दुर्गान्सुदुर्गाहनान्।
दुर्गामालयमानिनाय करूणाशीलां शिलामातरम्।।[8]

भगवती शिलादेवी कछवाहों की आराध्य देवी हैं। इनकी स्थापना आमेर के राजमहल की दाहिनी ओर विशाल भव्य मंदिर में की गई है। ढाका के निकट स्थित जैसोर (अब बांग्लादेश) से लाकर मानसिंह ने शिला माता को आमेर में स्थापित किया था।

महाराज मानसिंह की छब्बीस रानियाँ थीं, जिनसे उनके ग्यारह पुत्र और पाँच पुत्रियाँ उत्पन्न हुईं थीं। इनमें सबसे ज्येष्ठ पुत्र जगतसिंह था, जिसकी मृत्यु महाराज मानसिंह के जीवनकाल में ही हो गई थी। अतः जगतसिंह की स्मृति में महाराज मानसिंह ने आमेर में "जगत शिरोमणि मंदिर" का निर्माण करवाया, जो आज भी आमेर में स्थित है।

यह जगत शिरोमणि मंदिर 16वीं शती का सुंदर एवं कलात्मक निर्माण है। इस मंदिर का तोरणद्वार और पत्थरों से कटी जाली का काम शिल्प की दृष्टि से महत्वपूर्ण है।[9]

---

[7] *ईश्वरविलास, प्रथम सर्ग, श्लोक–18*

[8] *ईश्वरविलास, प्रथम सर्ग, श्लोक–25*

मुख्य मंदिर के सामने एक गुमटी में गरुड़ की प्रतिमा विराजमान है, जिसके द्वार पर राधा–कृष्ण, विष्णु, देवी, शंकर और गणेश की मूर्तियाँ पत्थर में कुरेदकर बनाई गई हैं।[10]

यहाँ के पुजारियों का कहना है कि मंदिर में प्रतिष्ठित गिरधर गोपाल की प्रतिमा सुप्रसिद्ध भक्तिमती मीराबाई का उपास्य भगवद्–विग्रह है। इस मूर्ति को राजा मानसिंह पुजारियों के साथ चित्तौड़ से आमेर ले आए।

इस प्रकार हम समझ सकते हैं कि जयपुर के राजा मानसिंह अपने पुत्र–शोक को भी मंदिर निर्माण एवं भगवद्भक्ति द्वारा अभिव्यक्त करते थे। उन्होंने शिलादेवी का मंदिर जो बनवाया है, उसके बारे में कहा जाता है –

सांगानेर को सांगो बाबो, जयपुर को हनुमान।
आमेर की शिला देवी, लायो राजा मान।।

उक्त शिलादेवी की मूर्ति के बारे में एक किंवदंती ऐसी प्रसिद्ध है कि पहले यह एक शिलारूप थी, बाद में इसमें भगवती दुर्गा की मूर्ति उत्कीर्ण कराई गई, तब जाकर यह शिलादेवी आमेर में स्थापित की गई है। इसी को कविकलानिधि ने अपने काव्य में इस प्रकार अभिव्यक्त किया है –

जित्वाऽनन्यगतिं सुदुर्गवसतिं केदाररायं नृपं।
दैवं तस्य शिलामयीं भगवतीं मानी समानीतवान्।।[11]

राजा मानसिंह ने न केवल शिलादेवी की स्थापना की, अपितु उसने वृन्दावन में गोविन्ददेव जी का मंदिर और काशी आदि तीर्थों में अनेक मंदिरों का भी निर्माण करवाया था – ऐसे संकेत प्राप्त होते हैं। कुछ श्लोक द्रष्टव्य हैं –

वृन्दावने यामुनपुण्यतीरे गोविन्ददेवालयकैतवेन।
अग्रे कलौ जन्मवतां जनानां वैकुण्ठनिःश्रेणिमयं चकार।। (24)

जित्वा तत्र शताधिकान् क्षितिभृतां दुर्गान्सुदुर्गाहनान्।
दुर्गामालयमानिनाय करूणाशीलां शिलामातरम्।। (25)

काश्यां केशवविश्वनाथसुमहादेवालयादीन्यसौ
संख्यातीतमहोन्नतानि सुकृतान्युच्चैः समासादयन्।।
जित्वाऽनन्यगतिं सुदुर्गवसतिं केदाररायं नृपं।
दैवं तस्य शिलामयीं भगवतीं मानी समानीतवान्।। (26)[12]

इनके उक्त उत्तम कार्यों का उल्लेख करते हुए पं. गोपालनारायण बहुरा ने 'मानचरितावली' की रचना की है।

आमेर के बाद जयपुर की स्थापना महाराज सवाई जयसिंह ने की, जो कि अपने समय में अत्यन्त नीतिज्ञ, विद्वान्, विद्वानों के संरक्षक, वैज्ञानिक और धर्मनिष्ठ शासक थे।

---

9 *राजा मानसिंह ऑफ आम्बेर, डॉ. आर. एन. प्रसाद, पृष्ठ 149*

10 *जगतशिरोमणि टैम्पल एट आम्बेर, बी. एल. धामा*

11 *ईश्वरविलास, प्रथम सर्ग, श्लोक–26*

12 *ईश्वरविलास 1/24–26*

इनके बारे में कविकलानिधि ने महाकाव्य 'ईश्वरविलास' के दूसरे सर्ग में विस्तृत वर्णन किया है। राजा जयसिंह ने नवग्रह, धर्म, तीर्थ, मंदिर, तपोवन आदि के लिए जो कार्य किए, वे इस प्रकार व्यक्त किए गए हैं –

धर्मश्रमण्यगमवेदपुराणसिद्धा
ग्रन्था अपारकविवन्द्यकवीन्द्रजुष्टाः।
वाग्देव्यसद्गुणनिधेर्नृपतेर्जयस्य
शास्त्राणि मन्त्रनिवहाः स्फुरितं ययुः।।[13]

अर्थात् धर्म, श्रमण, वेद, पुराण और सिद्ध ग्रन्थ, जिन्हें अपार कवियों ने वन्दनीय माना, वे सभी शास्त्र और मंत्रराजियाँ राजा जयसिंह के गुणनिधि रूप में प्रकट हो गईं थीं।

जयपुर नगर की स्थापना के समय राजा सवाई जयसिंह ने धर्म की पुनः प्रतिष्ठा की दृष्टि से सर्वप्रथम धर्मस्थानों, तीर्थों और मंदिरों का निर्माण कराया। इसका स्पष्ट उल्लेख ईश्वरविलास महाकाव्य में हुआ है। महाकवि कहते हैं –

तत्र तीर्थन्यनेकानि धर्मस्थानानि संस्थितानि चक्रुर्मुनयः।
संस्थापितं च धर्मं मुनिभिः क्षपकाध्युषितं पुरा च यथा।।[14]

राजा सवाई जयसिंह की आस्था न केवल वेद और तीर्थों में थी, अपितु वह वैदिक यज्ञों में भी गहन श्रद्धा रखते थे। जयपुर नगर के मध्य में बना 'यज्ञेश्वर महादेव' का मंदिर राजा जयसिंह की धार्मिक भावना का प्रतीक है। 'ईश्वरविलास' महाकाव्य के अनुसार –

ततो यज्ञाय स विज्ञे यज्ञविघ्नं प्रशान्तये।
यज्ञेश्वराय चक्रेऽसौ पुरीमध्ये महामखम्।।[15]

इसी प्रकार उन्होंने ब्रज क्षेत्र के विकास हेतु तीर्थस्थलों का जीर्णोद्धार किया, मंदिरों की स्थापना कराई, कुंडों को खुदवाया, जिससे वहाँ आने वाले तीर्थयात्रियों को कोई कष्ट न हो। एक उदाहरण देखें –

व्रजे महाराज जयसिंह ने श्रीराधागोविन्द, श्रीगोवर्धननाथजी, बिहारीजी, गोकुलचन्द्र, मदनमोहन, श्रीनिधिवन, सेवा कुञ्ज, चीरघाट, बिहारी घाट आदि पर महंतों की नियुक्ति की और अनेक तीर्थों का जीर्णोद्धार कराया।[16]

राजा जयसिंह की मान्यता थी कि –
"देवालयों में मूर्तियों की स्थापना और मंदिरों का निर्माण धर्म एवं संस्कृति की रक्षा का मूल स्रोत है।"
यह भावना उन्हें विरासत में अपने पूर्वजों से मिली थी।

---

[13] *ईश्वरविलास, द्वितीय सर्ग, श्लोक–1*
[14] *ईश्वरविलास, द्वितीय सर्ग, श्लोक–14*
[15] *ईश्वरविलास, द्वितीय सर्ग, श्लोक–20*
[16] *पं. रमाकान्त शास्त्री, ब्रज–साहित्य का इतिहास, पृ. 305*

इसी भावना के अन्तर्गत सवाई जयसिंह द्वारा जयपुर नगर में 250 वर्ष पूर्व बनवाया गया "मानसरोवर" एक पवित्र तीर्थ के रूप में आज भी विद्यमान है। मान्यता है कि मानसरोवर में स्नान करने मात्र से व्यक्ति पापों से मुक्त हो जाता है।

निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि इस प्रकार कविकलानिधि द्वारा रचित महाकाव्य 'ईश्वरविलास' न केवल राजवंश की गौरवगाथा है, अपितु वैदिक धर्म, पूजा-पद्धति, मंदिर-स्थापना, और संस्कृति संरक्षण की अनुपम झलक भी प्रस्तुत करता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची-

1. भट्ट, श्रीकृष्ण. ईश्वरविलास महाकाव्य (प्रथम सर्ग, श्लोक 1, 16–18, 24–26, 45; सप्तम सर्ग, श्लोक 14, 38–40)। (पृष्ठ 5)।
2. शर्मा, ए. हनुमाननाथ सम्प्रदाय का इतिहास (पृ. 44)।
3. प्रसाद, आर. एन. राजा मानसिंह ऑफ अम्बेर (पृ. 149)।
4. धामा, बी. एल. जगतशिरोमणि टैम्पल एट अम्बेर।
5. जीव गोस्वामी. (वि.सं. अज्ञात). गोविन्दमन्दिराष्टकम् [पाण्डुलिपि संख्या 4664 म्– 6364, वृन्दावन शोध संस्थान]। मानचरितावली में अर्थसहित प्रकाशित।